वर्ष : २१ अङ्क : ३ जून १९९७ ई०

जैन भवन

तित्थयर

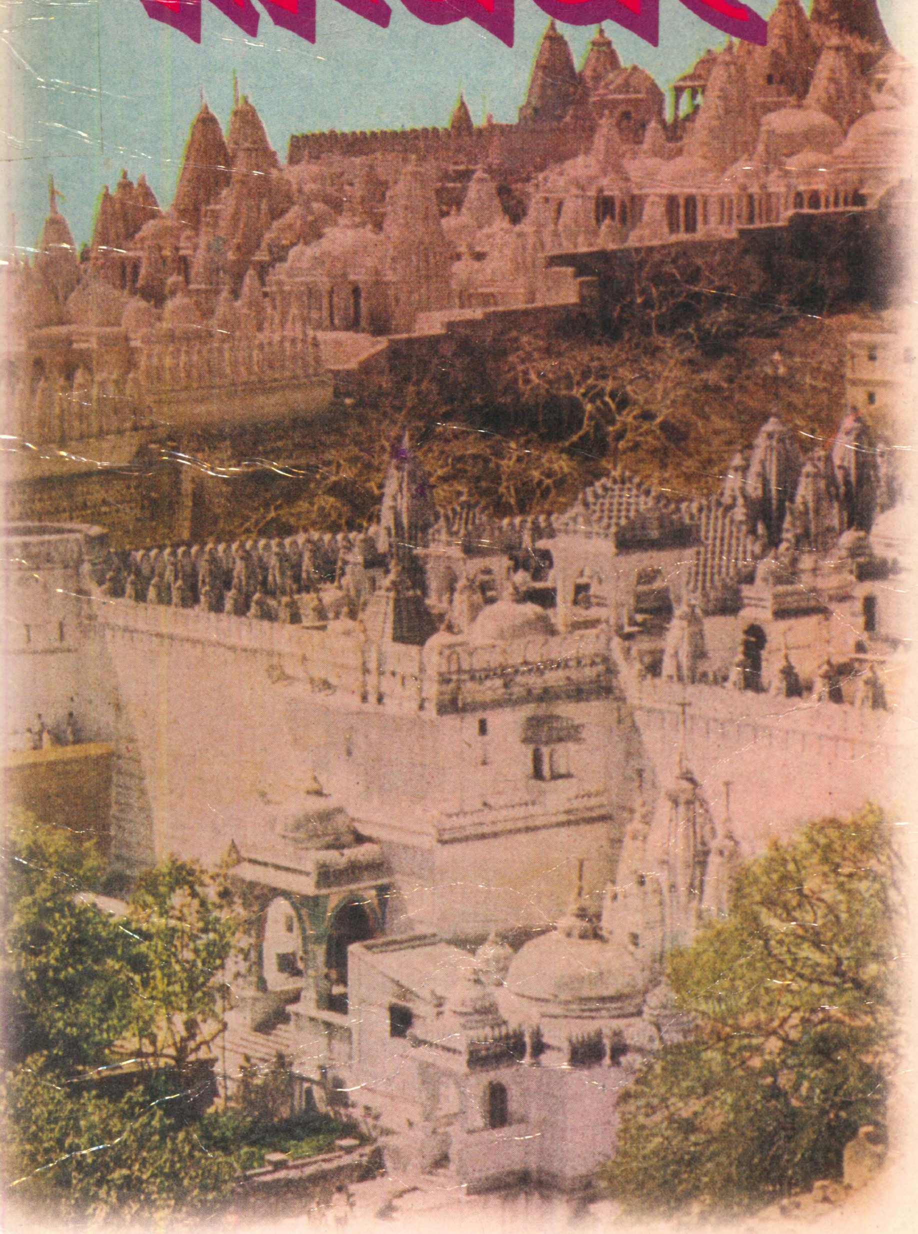

~~1213~~

'जिसे तुम मारना चाहते हो वह तुम ही हो।'

Sethia Oil Industries Ltd.

Manufacturers of Rice Brain, D.O.B Mustard D.O.C, Neem deoiled Powder, ground nut Deoiled Cakes, Mahua deoiled cakes etc.

Plant	Registered Office	Executive Office
Post Box No. 5	143, Cotton Street	2, Indian Exchange Place
Lucknow Road	Cal - 700 007	Calcutta - 700 007
Sitapur - 261001 (U.P)	Ph : 2384329/ 8471/5738	Ph : 2201001/9146/5055
Ph : 42017/397/073	Gram - Sethia Meal	Telex : 217149 SO IN IN
Gram - Sethia - Sitapur		Fax : 2200248
Fax : 42790		

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष २१ : अंक ३
जून १९९७

□

संपादन
राजकुमारी बेगानी
लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये
वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये
प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७००००७
दूरभाष : २३८२६५५

□

मुद्रक
अनुप्रिया प्रिन्टर्स
६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन,
कलकत्ता-७

सूची

शौरीपुर का राजकुमार	४३
श्रावक-जीवन	५१
वसुदेवहिंडी और बृहत्कथा	६१
राजा सम्प्रति	७१

OUR CUSTOMERS ARE OUR MASTERS

You can safely choose Oodlabari Tea for finest CTC teas, flavoury leaf teas and health giving Green Teas at reasonable prices. You can also phone at our Office for any assistance in selection of teas.

Insist on purchasing following packets

Anyone desirous of taking dealership for our teas may kindly contact at following address

THE OODLABARI COMPANY LIMITED
NILHAT HOUSE, 6TH FLOOR
11 R. N. MUKHERJEE ROAD, CALCUTTA 700 001

Calcutta office Phone : 248-1101, 248-9594, 248 9515

शौरीपुर का राजकुमार

पूर्णचन्द जैन

कालिन्दी

कालिन्दी के कूल किनारे
तरुवर की थी शीतल छाया
पूर्ण चन्द्र की सुखद चाँदनी
छिटकाती थी सुन्दर साया ॥ १ ॥

चांदनी की झीनी चादर से
वह वसुन्धरा को धोती थी
सरिता की शीतल लहरों को
प्रतिपल उद्वेलित करती थी ॥ २ ॥

तट की उन चट्टानों पर था
ध्यान मग्न एक तरुण कुमार
देख रहा, अपलक नयनों से
शौर्यपुरी का राजकुमार ॥ ३ ॥

राजमहल को छोड़ आज वह
मंथन को वहाँ आया था
भूत और आगत भविष्य का
वह सेतु खोजने आया था ॥ ४ ॥

वर्त्तमान में जीता था वह
मधुर अतीत न भुला सका
आने वाले कल का चिन्तन
उसका भी था माधुर्य बड़ा ॥ ५ ॥

प्रलय की प्रथम तरंगों ने
पृथ्वी को जब स्पर्श किया
रवि ने प्लावित कर हिमगिरि को
धारा को पहला मोड़ दिया ॥ ६ ॥

उन निर्मम हिम चट्टानों का
तूने ही दर्प मिटाया था
वह चली सलिल धारा तेरी
जगती का बोझ उठाया था ॥ ७ ॥

जीवन की सृष्टि रची तभी
तेरे ही इन्हीं किनारों पर
मानव जीवन की प्रथम किरण
चमकी तेरे ही आँचल पर ॥ ८ ॥

मन्दिर मठ भी तो यहीं बने
था ज्ञान दीप भी यहीं जला
ऋषियों की प्रखर साधना का
प्रथम पुष्प भी यहीं खिला ॥ ९ ॥

जब ऋषभ देव ने मानव को
जीने का पहला मंत्र दिया_
तूने ही आगे बढ़ कर के
उसके पथ का अवतरण किया ॥ १० ॥

सम्राटों के राजमुकुट भी
पावन होते तेरे जल से
चिता जली तेरे तट पर ही
जब बिदा हुए इस भूतल से ॥ ११ ॥

जीवन मृत्यु के मध्य सखी
तूने ही रेखा खींची थी
वीभत्स चींख शमशानों की
तूने ही सहज समेटी थी ॥ १२ ॥

माधव की मुरली बजती थी,
तेरे ही इन्हीं किनारों पर
वन उपवन राधा भटक रही
संगीत सुनाती धारों पर ॥ १३ ॥

तू बांध सकी न नटवर को,
वह मर्म समझता सागर का
तू भी बहती उस ओर चली,
जिस ओर द्वार था सागर का ॥ १४ ॥

उत्तर पथ की अर्गला खोल
जब जब परदेशी आये थे
माँ की मर्यादा हरने को
विकराल रूप धर छाये थे ॥ १५ ॥

तेरे ही तट पर घोष हुआ
जय महादेव का नारा था
जय मातृभूमि जय पितृभूमि
सबने यही पुकारा था ॥ १६ ॥

दसों दिशाय गूँज उठी थीं
फिर बज उठी रणभेरी थी
माँ की संतानें जाग उठी
और तनिक नहीं कीनी देरी थी ॥ १७ ॥

अनगिनत शीश भी यहीं कटे
बलिदान दिया उन वीरों ने
शोणित की धारा बह करके
मिल गई तेरी ही लहरों में ॥ १८ ॥

लाल-लाल लाली से सरिते
तूने उनको सम्मान दिया
अपनी धारा को मोड़ मोड़
तूने उनको प्रणाम किया ।। १९ ।।

उन वीर बाँकुरे युवकों ने
था विजय श्री का वरण किया
सीमा पर धकेल शत्रु को
माता को था निर्विघ्न किया ।। २० ।।

कुछ आक्रान्ता रुक गये यहाँ
सौंदर्य तेरा उनको भाया
किया समाहित उनको तूने
फिर बही समन्वय की धारा ।। २१ ।।

प्रचलित यही है युग-युग से
हमने तो सबको साथ लिया
शत्रु को भी मित्र बनाकर
सदा विश्व प्रेम का पाठ दिया ।। २२ ।।

सतयुग, द्वापर, त्रेता, तीनों
सब ही युग तूने देखे हैं
मृत्यु लोक के पुण्य पाप भी
तूने ही सहज समेटे हैं ।। २३ ।।

कितनी सरिते तू दयामयी
युग-युग की कालिमा लिये चली
हुआ नील आवरण उससे ही
तू शान्त रही और बहे चली ।। २४ ।।

कलयुग भी तुझे देखना है
तेरा आँचल तो है विशाल
मानव यदि मूल्य विहीन बने।
करना ना तू उसको अनाथ॥ २५॥

भागीरथ गंगा को लाये
जन का कल्याण कराने को
तू स्वयं दौड़ती आई थी
मानव को राह दिखाने को॥ २६॥

तेरा तो है उद्गम विशाल
छू रहा गगन की परतों को
नन्दनवन की छाया के तले
अनुप्राणित करता मानव को॥ २७॥

तू तो सचमुच ही निर्विकार
तेरे जीवन का लक्ष्य एक
कण कण अपना आहुति देती
बनता विराट फिर रूप एक॥ २८॥

यही है शाश्वत सत्य और
है मूल मन्त्र इस जीवन का
सत्पथ पर बढ़ते ही जाना
है मार्ग यही तो शिवपुर का॥ २९॥

थे नेम कुँवर यह सोच रहे
अरु खोज रहे युग सेतु को
चर एक वहाँ आया उस क्षण
संदेशा उनको देने को॥ ३०॥

संकल्प

थे चिन्तित पिता समुद्र विजय
हरि का सन्देशा आया था
अपने परिजन अरु बन्धु सभी
को सागर तट पर बुलवाया था ।।

अपने उस पीत झरोखे से
वह देख रहे थे सरिता को
वह सोच रहे पावन अतीत
आगत भविष्य की रचना को ।।

फिर नेम कुंवर सब जान गए
आगत को भी पहचान लिए
हट कर अतीत के बन्धन से
वह वर्तमान पर ध्यान दिए ।।

परिवर्तन यदि उन्नति ही है
उसको हम सब स्वीकार करें
यदि उसको हमने ठुकराया
तो अपना ही संहार रचें ।।

परिवर्तन की इस आंधी को
हर युग में हमने झेला है
हम खड़े रहे अविचल होकर
औरों को मिटते देखा है ।।

इतिहासों की यह पृष्ठभूमि
इतिहास इसी से बनते हैं
भटका यदि कोई अतीत में
इतिहास नहीं बन सकते हैं ।।

यह तो सन्देश है माधव का
श्रीकृष्ण हमारे नायक हैं
राजनीति के चतुर चितेरे
नीति के वे निर्णायक हैं ।।

अनुशासन धर्म हमारा है
इसका पालन तो है करना
जिसने भी इसे गंवाया है
है चूर हुआ उनका सपना ।।

ब्रज का सुरभित माधुर्य गीत
कालिन्दी का वह मधुर गान
कोयल की वे मीठी ध्वनियाँ
चातक की भी वह मधुर तान ।।

यह सब तो कल की बातें हैं
वह कल जो कल ही बीत गया
हम आज आज में जीते हैं
वह भी क्षण क्षण कर खिसक गया ।।

हम प्रातः की ही बात करें
अरु अपना उसे बनाये हम
यदि बीता कल बाधा देवे
उनको भी तुरन्त भुलायें हम ।।

अब हमको आगे बढ़ना है
द्वारा ही नीड़ हमारा है
हम स्वर्ग बनावें वह नगरी
ऐसा पुरुषार्थ हमारा है ।।

हुँकार उठी फिर हर घर से
हमको तो द्वारा जाना है
यह प्रबल चुनौती पौरुष को
यह कर के अब बतलाना है।।

थे कोटि कोटि वह नर नारी
जब निकल पड़े ब्रज भूमि से
फिर किया प्रयाण द्वारका को
यमुना की उठती लहरों से।।

क्रमशः

श्रावक जीवन (९)

आचार्य श्री विजय भद्रगुप्त सूरीश्वरजी महाराज

पूर्वानुवृत्ति

परम कृपानिधि महान् श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी, स्वरचित 'धर्मबिन्दु' ग्रंथ के तीसरे अध्याय में गृहस्थजीवन का विशेष धर्म बता रहे हैं। बारह व्रतमय विशेष धर्म बताने से पूर्व वे कहते हैं कि धर्मजिज्ञासा से जो कोई महानुभाव गुरु के पास आये, गुरु उसको सर्वप्रथम साधुधर्म का रसपूर्ण उपदेश दे ! विस्तार से साधु धर्म की विवेचना कर "मनुष्यजीवन में साधु धर्म की ही आराधना करनी चाहिए," ऐसा भाव श्रोता के हृदय में पैदा करना चाहिये।

यदि गुरु, पहले साधु धर्म का उपदेश नहीं देते हैं, सीधा गृहस्थ धर्म का ही उपदेश देते हैं तो उनको जिनाज्ञा-भंग का पाप लगता है। हाँ, जो व्यक्ति साधु धर्म को स्वीकार और पालन करने में समर्थ नहीं होता है उसको गृहस्थ धर्म का उपदेश देते हैं।

प्रश्न : गुरुदेव गृहस्थ को अणुव्रत —गुणव्रत—शिक्षाव्रत—स्वरूप गृहस्थधर्म प्रदान करते हैं, तो जितने अंश में गृहस्थ पापों का त्याग नहीं करता है, उन पापों में गुरुदेव को अनुमति का दोष नहीं लगता है क्या ? चूंकि अणुव्रतादि आंशिक पाप त्यागरूप होते हैं।

उत्तर : नहीं लगता है दोष गुरु महाराज को। ग्रंथकार स्वयं प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं :

'भगवद्वचनप्रामाण्यादुपस्थितदाने दोषाभावः।'

'उपासकदशा' वगैरह आगमग्रन्थों में हम पढ़ते हैं कि श्रमण भगवान् महावीरदेव ने स्वयं आनन्द वगैरह श्रावकों को अणुव्रतादि दिये थे ! तो क्या भगवान् को भी जिन अंशों में उन श्रावकों ने पापत्याग नहीं किया था, उनमें अनुमति का दोष लगा ? नहीं, भगवान जो भी करते हैं वह सर्वांगसुंदर होता है, दोषरहित होता है। इसलिये, हमें भी अणुव्रतादि गृहस्थ धर्म देने में पाप—अनुमति का दोष नहीं लगता है। जितने अंश में गृहस्थ पापों का त्याग नहीं करता है, उन अंशों में हमारी अनुमति नहीं होती है कि 'भले वह पाप करता रहे···पाप करके भी सुखी रहता हो तो रहे···!' ऐसा विचार हम नहीं करते हैं। हम तो यह सोचते हैं अणुव्रत वगैरह व्रत-नियम देते समय कि :

'विचारा सभी पापों का त्याग कर साधुधर्म को स्वीकार नहीं कर सकता है, भले, अभी अणुव्रतादि ग्रहण करे····जब उसका वीर्योल्लास बढ़ेगा, वह महाव्रत भी स्वीकार करेगा।'

टीकाकार आचार्यश्री तो कहते हैं कि जीवों को अणुव्रतादि देने में गुरुओं को मध्यस्थ भाव यानी साक्षीमात्र-भाव धारण करने का होता है।

अणुव्रतादि देने में मात्र साक्षीभाव चाहिए :

साक्षीभाव धारण करना है यानी कर्तृत्वभाव धारण नहीं करना है। मैंने इस को अणुव्रतादि दिये!' ऐसा कर्तृत्वभाव नहीं चाहिये व्रतदाता के मन में। 'यह महानुभाव अणुव्रतादि लेने उपस्थित हुआ है और मुझे उस को विधिवत् देने हैं।' बस! इस से ज्यादा नहीं सोचना है। इस से, जो और जितने पाप वह नहीं छोड़ता है, उन और उतने पापों में व्रतदाता गुरु की अनुमति नहीं होती है। व्रतदाता की अनुमति का प्रश्न ही नहीं उठता है! जब उसको साक्षीमात्र भाव का अवलंबन लेने का है, फिर अनुमति किस बात की?

पहला अणुव्रत लेनेवाला व्यक्ति 'मैं जानबूझकर त्रस जीवों की हिंसा नहीं करूंगा कि जो निरपराधी हैं।' इस प्रकार अणुव्रत लेता है। इसने अपराधी जीवों को नहीं मारने की प्रतिज्ञा नहीं ली, तो क्या इन जीवों को वह मारेगा इस में व्रतदाता गुरु की अनुमति हो गई? नहीं, व्रतदाता गुरु तो व्रत लेनेवाला जिस प्रकार व्रत मांगता है उस प्रकार देते हैं। उस को महाव्रत लेने को समझाते हैं, वह लेना नहीं चाहता है, तो फिर वह जितने अंश में पापों का त्याग करना चाहता है, उतना त्याग करवाते हैं। वह जो पाप नहीं छोड़ता है, उन पापों के साथ व्रतदाता गुरु को कुछ भी लेना-देना नहीं होता है।

श्रेष्ठिपुत्र की एक उपनय कथा :

सुनिये, इस बात को एक उपनय कथा के माध्यम से समझाता हूं। बहुत प्राचीन समय की यह कथा है। घोर व्यथा की यह कथा है।

प्राचीन मगध देश में (वर्तमान में बिहार) वसन्तपुर नाम का नगर था। उस नगर का राजा था जितशत्रु और रानी का नाम था धारिणी। उसी नगर में समुद्रदत्त नाम का श्रेष्ठि रहता था। उसकी पत्नी का नाम था सुमंगला। सुमंगला ने क्रमशः छः पुत्रों को जन्म दिया। उनके नाम थे प्रियंकर, क्षेमंकर, धनदेव, सोमदेव, पूर्णभद्र और माणिभद्र।

एक दिन अन्तःपुर में रानी धारिणी ने राजा के सामने अद्‌भुत नृत्य किया। इस से संतुष्ट हो राजा ने रानी से वरदान मांगने को कहा। रानी

ने कहा, 'नाथ, अभी वरदान आप के पास ही रखिये। अवसर आने पर मांगूंगी।'

कुछ दिनों के बाद कौमुदी महोत्सव का समय आया। रानी ने राजा को कहा : 'नाथ, मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं मेरे परिवार के साथ व शेष अन्तःपुर के साथ, रात्रि के समय नगर के राजमार्गों पर परिभ्रमण करूँ! राजा ने स्वीकृति दी और नगर में पटह बजवाया कि 'आज सूर्यास्त के पहले सभी पुरुष नगर के बाहर चले जाएँ। रात्रि के समय कोई भी पुरुष नगर में नहीं रहेगा। राजा भी मंत्रीमंडल व नगर के प्रमुख व्यक्तियों के साथ नगर के बाहर 'मनोरम' उद्यान में चला गया।

परन्तु श्रेष्ठि समुद्रदत्त के छः पुत्र नगर के बाहर नहीं जा सके। वे अपनी दुकान के काम में अति व्यस्त रहे 'अभी चलते हैं, अभी चलते हैं...' करते करते जब वे नगर के द्वार पर पहुंचे, द्वार बन्द हो गये। वे वापस अपने घर लौट गये और भूमिगृह में छिपकर रहे।

रात्रि के समय धारिणी सुन्दर शृंगार सज कर अन्तःपुर की अन्य रानियों के साथ नगर में परिभ्रमण करने निकली। राजमार्गों पर जगह जगह दिये जल रहे थे। सभी राजमार्ग परिमार्जित थे। जगह-जगह तोरण बांधे गये थे। सुगन्धी जल का छिड़काव किया गया था। रानी ने प्रातःकाल तक नगर में परिभ्रमण किया। राजा और प्रजा ने नगर में प्रवेश किया। राजा ने नगररक्षकों को आदेश दिया : नगर में तलाश करो, मेरी आज्ञा को किसी ने भंग तो नहीं किया है ?'

नगर रक्षकों ने तलाश की। नगरश्रेष्ठि के छः पुत्रों ने राजा की आज्ञा का पालन नहीं किया था, नगर रक्षकों को मालूम हो गया। उन्होंने राजा को निवेदन किया। राजा अत्यन्त रोषायमान हुआ। उसने आज्ञा दी : 'उन आज्ञाभंजक छः लड़कों का वध किया जाय।'

आज्ञा सुनकर श्रेष्ठि समुद्रदत्त स्तब्ध रह गया। उसका चित्त भ्रमित सा हो गया। अत्यन्त व्यथा से व्यथित हो गया।

परन्तु अविलंब स्वस्थ बन, नगर के प्रधान लोगों को साथ ले, श्रेष्ठ रत्नों का थाल लेकर वह राजा के पास गया। उसने राजा को प्रणाम कर कहा : 'महाराज' मेरे पुत्रों का कोई भी दुष्ट आशय नहीं था। वे दुकान के कार्यों में अति व्यस्त होने से बाहर नहीं निकल सके। नगर के द्वार बन्द हो गये थे। इसलिये उनका अपराध क्षमा करें। मेरे प्रिय पुत्रों को जीवन प्रदान करने की कृपा करें। रोते-विलखते ऐसी प्रार्थना करने पर भी राजा का रोष शान्त नहीं होता है। पुनः पुनः प्रार्थना करने पर भी राजा क्षमा प्रदान नहीं करता है।

तब श्रेष्ठि ने कहा : महाराज, आप मेरे छः पुत्रों को मुक्त करना नहीं चाहते तो पाँच पुत्रों को क्षमा कर मुक्त करने की कृपा करें।

राजा ने नहीं माना, तो श्रेष्ठि ने कहा : कृपानाथ, आप पांच नहीं तो चार पुत्रों को मुक्त करने की कृपा करें।' राजा ने नहीं माना।

मेरे नाथ, चार नहीं तो तीन पुत्रों को अभयदान देने की कृपा करें····' राजा का पत्थर दिल फिर भी नहीं पसीजता। श्रेष्ठि ने कहा।

'राजेश्वर, तीन नहीं तो दो पुत्रों को मुक्त करें···। राजा नहीं मानता है, तो श्रेष्ठि ने गिड़गिड़ाते हुए कहा : 'आप को मैं भगवान् मानता हूं···मेरे पर कृपा करें, मेरे एक पुत्र को तो मुक्त करना ही होगा···अन्यथा मैं निःसंतान हो जाऊँगा, मेरा जीना व्यर्थ हो जायेगा···। व्यर्थ तो हो ही गया है जीवन···।"

मंत्रीमंडल ने भी राजा को अनुनय किया। राजा ने एक पुत्र को मुक्ति दी। श्रेष्ठि उदासीन भाव से···एक पुत्र को अपने साथ लेकर घर आया। 'पाँच पुत्रों का वध होगा···' यह विचार मेरा एक पुत्र बच गया···' इस बात का आनन्द नहीं होने देता है। एक गहरा दुःख दूसरे सामान्य सुख का अनुभव नहीं होने देता है। पांच पुत्रों की मुक्ति नहीं होने से गहरा दुःख था श्रेष्ठि के हृदय में भरसक प्रयत्न करने पर भी वह सभी पुत्रों को बचा नहीं पाया था! उसको अपने सभी पुत्रों के ऊपर प्रेम था। इसलिए उसका हृदय व्यथित था। एक पुत्र बचने पर भी वह उस बात की खुशी नहीं अनुभव कर सकता था। एक पुत्र को बचाया श्रेष्ठि ने, इसका अर्थ यह नहीं होता कि पांच पुत्रों की हत्या में उसने सहमति-अनुमति दी थी! वह उनको बचाना चाहता था, बचाने का भरसक प्रयत्न भी किया था, परन्तु वह निरूपाय था·· पांच पुत्रों को नहीं बचा पाया····! उसके पांच पुत्रों के वध में अनुमति होने का प्रश्न ही नहीं उठता!

अब, इस कहानी का उपनय बताता हूँ।

—वसन्तपुर नगर यानी संसार,

—राजा यानी श्रावक (गृहस्थ)

—श्रेष्ठि यानी गुरु

—छः पुत्र यानी षड्जीवनिकाय (पृथ्वीकायादि)

गुरू अपने पुत्र समान षड्जीवनिकाय के जीवों को हिंसा करते हुए गृहस्थ को, श्रावक को समझाते हैं, यानी साधुधर्म स्वीकार कर के षड्जीवनिकाय (पृथ्वीकाय, अपकाय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पति काय और त्रसकाय) के जीवों को पूर्ण अभयदान देने स्वरूप साधुधर्म को स्वीकार करने को समझाते हैं, फिर भी गृहस्थ नहीं समझता है और अणुव्रतादि ही ग्रहण करता है, तब गुरु मध्यस्थ भाव

साक्षीभाव ही धारण करते हैं। श्रावक जितने हिंसादि पाप करता है उसमें खुशी नहीं होती ! वे मात्र साक्षी भाव धारण करते हैं।

दो रहस्यभूत बातें :

टीकाकार आचार्यश्री ने दो बातें महत्वपूर्ण बतायी हैं। पहली बात : 'भगवदनुष्ठानस्य सर्वांगसुन्दरत्वेनैकान्ततो दोषविकलत्वात्।' परमात्मा तीर्थंकरदेव का कोई भी अनुष्ठान, कोई भी क्रिया हो, सर्वांगसुन्दर होती है। एकान्ततः दोषरहित होती है। कितनी यथार्थ बात कही है। टीकाकार आचार्यश्री ने ! इस बात का निष्कर्ष यह होता है कि हमें परमात्मा तीर्थंकरदेव की प्रत्येक क्रिया में सर्वांग सुन्दरता देखनी है, नहीं तो खोजनी है। अवश्य मिलेगी सुन्दरता।

परन्तु सौंदर्य जितना वस्तु में या क्रिया में नहीं होता, उतना देखने वाले की दृष्टि में होना चाहिए ! दृष्टि में सौंदर्य नहीं होगा तो वस्तु या व्यक्ति में सौन्दर्य नहीं दिखायी देगा। दोषदृष्टि दोष देखेगी।

प्रश्न : जैनधर्म के ही एक पंथ के आचार्य ने लिखा है कि भगवान महावीर स्वामी ने अपना आधा देवदूष्य ब्राह्मण को दिया था, वह उनकी भूल थी। भगवान भी चूके !

महाराजश्री : और वे आचार्य तो सब कुछ चूक गये न ! उनको दानधर्म का निषेध करना था, दया धर्म का निषेध करना था, इसलिए भगवंत की भी भूल बताने की कुत्सित चेष्टा की है उन्होंने ! वास्तव में देखा जाय तो वे ऐसे उजड़े हुए····मरुभूमि के प्रदेश के थे कि उनमें सौंदर्यदृष्टि हो नहीं सकती थी। वे चाहते तो भी भगवान् महावीर स्वामी की उस दानक्रिया में सौंदर्य देख नहीं सकते थे। वह क्रिया दोष रहित देख सकते थे। परन्तु देखते कैसे ? दृष्टि में विपर्यास था, दृष्टि बिगड़ गयी थी ! दया और दान—इन दो धर्मों का छेद उड़ाना था उनको ! खण्डन का भी एक जोश होता है। और जोश में होश नहीं रहता। तीर्थंकर जैसे विशिष्ट ज्ञानी लोकोत्तर पुरुष की भूल एक अज्ञानी व्यक्ति बताता है ! जिस समय भगवान ने ब्राह्मण को देवदूष्य दिया था उस समय भगवान को मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यव ज्ञान ये चार ज्ञान थे। और गल्ती बताने वाले उन स्वामी को कितने ज्ञान थे ? क्या पूरा श्रुतज्ञान भी था ? संस्कृत और प्राकृत भाषा का भी परिपूर्ण ज्ञान था क्या? *ठीक है, अज्ञान प्रजा में, निरक्षर प्रजा में उस समय एक 'पंथ' निकाल दिया !* पंथ निकालना बड़ी सरल बात होती है। जिस प्रकार भारत में कितने राजकीय पंथ निकलते हैं ! कितनी पार्टियां ? वैसे !

परमात्मा तीर्थंकरदेव चाहे बचपन में हों, युवावस्था में हों या बड़ी उम्र में हों—कोई भी अवस्था में उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति दोषरहित होती है, सर्वांगसुन्दर होती है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात है—साक्षीभाव की। साधुपुरुषों के लिये वैश्विक बातों में साक्षीभाव ही अपेक्षित है। मात्र ज्ञाताभाव, मात्र दृष्टाभाव रहना चाहिए। गृहस्थ को अणुव्रतादिमय गृहस्थधर्म प्रदान करने में भी जब साक्षीभाव रखने को कहा गया है, तो दूसरी सामाजिक बातों में तो सुतरां साक्षीभाव रहना चाहिए। पापमय प्रवृत्ति में खासकर साक्षीभाव रहना चाहिये। कोई भी सावद्य प्रवृत्ति में साधु पुरुषों की अनुमोदना नहीं होनी चाहिए। इतनी सावधानी बरतते हुए गुरुजनों को चाहिए कि वे विधिपूर्वक व्रत प्रदान करें।

व्रतप्रदान में विधि की व्यापकता :

व्रत देना और लेना महत्वपूर्ण क्रिया है। विधिपूर्वक व्रत दिया जाता है तो व्रत लेनेवाले को व्रतपालन में शक्ति प्राप्त होती है। विधि-पूर्वक व्रत ग्रहण करने से व्रतपालन में दृढ़ता आती है। और, यही तो उद्देश्य होता है व्रत लेने का। व्रतों को ग्रहण कर उन व्रतों का दृढ़ता से पालन करने से आत्मा पाप मुक्त विशुद्ध बनती है। क्रमश: महाव्रतमय जीवन बनाने की भावना जगती है, शक्ति प्राप्त होती है।

ग्रन्थकार महर्षि ने 'विधि' के अन्तर्गत पांच बातें बतायी हैं—

योगवंदननिमित्तदिगाकारशुद्धिरिति :

—पहली होनी चाहिये योगशुद्धि,
—दूसरी होनी चाहिए वन्दनशुद्धि,
—तीसरी होनी चाहिये निमित्तशुद्धि,
—चौथी होनी चाहिये दिशाशुद्धि,
—और, पांचवीं होनी चाहिए आगारशुद्धि।

'विधि' में कोई एक बात नहीं हैं, पांच-पांच बातें हैं। पापों से मुक्त करने वाला, भवसागर से पार लगाने वाला धर्मग्रहण करना है न! उस धर्म का पालन करना है। इसलिये इन सारी बातों पर लक्ष देना आवश्यक होता है। अपन यहां इन पांचों बातों पर विवेचन करेंगे। सर्वप्रथम 'योगशुद्धि' बताता हूँ।

योगशुद्धि :

यहां पंचांग के सिद्धियोग या कुमारयोग की बात नहीं है। यहां बात है मन वचन और काया के योगों की। मनोयोग, वचनयोग और काययोग की शुद्धि होना आवश्यक है।

गृहस्थधर्म अंगीकार करना है, पवित्र कार्य करना है, इसलिये शरीर शुद्ध होना चाहिये। शरीर के साथ-साथ वस्त्र भी शुद्ध होने चाहिये।

दूसरी चाहिये वचनयोग की शुद्धि। व्रत ग्रहण करने से पूर्व, ग्रहण करते समय और ग्रहण करने के बाद, वाणी-वचन निष्पाप रहने चाहिये। क्रोधयुक्त, मानयुक्त, मायायुक्त वचन नहीं बोलने चाहिये। वैसे असत्य और अहंकारी वचन नहीं बोलने चाहिये। किसी को पीड़ा हो वैसे वचन नहीं बोलने चाहिये। सत्य, प्रिय और हितकारी वचन ही बोलने चाहिये। यह है वचनशुद्धि।

जब आप शुभ, पवित्र और सुन्दर विचार करते हैं, तब मनोयोग शुद्ध कहलाता है। व्रत ग्रहण करते समय मन प्रशान्त चाहिये, और उल्लसित चाहिये। व्रतदाता गुरुदेव के प्रति बहुमान के शुभ भाव हों, व्रतमय धर्म के प्रति श्रद्धा के निर्मल भाव हों, 'इन व्रतों से मेरी आत्मा निर्मल बनेगी,' इस प्रकार के प्रशस्त भाव हों, इस तरह मन-वचन-काया के योगों की शुद्धि होनी चाहिये।

वंदनशुद्धि

दूसरी शुद्धि चाहिये वन्दन की। व्रत ग्रहण करते समय परमात्मा को व गुरु को वन्दन करने का होता है। विधिपूर्वक वन्दन करने का होता है। वन्दन की क्रिया के सूत्र हैं। सूत्रोच्चारण स्खलना रहित करना चाहिये। सूत्रोच्चारण करते समय अल्पविराम, पूर्णविराम आदि का लक्ष्य रखते हुए कहां रुकना, कहां नहीं रुकना, इस का ख्याल रखना चाहिये। सभी सूत्र परिपूर्ण बोलने चाहिये। प्रणिपात भी विधिवट् पंचांग करना चाहिये।

व्रतग्रहण करते समय 'कायोत्सर्ग' भी करने का होता है, वह शान्तचित्त से करना चाहिये। जितने 'नवकारमंत्र' का या जितने 'लोगस्स सूत्र' का कायोत्सर्ग करना हो, भ्रान्ति रहित करना चाहिये। यानी वन्दन की क्रिया में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये, अशुद्ध सूत्रोच्चार नहीं करना चाहिये और मुद्रा....आसन वगैरह का खयाल करना चाहिये। यह है वंदनशुद्धि।

निमित्तशुद्धि

तीसरी शुद्धि है निमित्तशुद्धि। व्रतमय विशिष्ट गृहस्थधर्म को स्वीकार करते समय अच्छे निमित्त वातारण में मिलने चाहिये जैसे कि उस समय शंखनाद सुनायी दे, शहनाई....मृदंग इत्यादि वाद्यों की ध्वनि सुनायी दे। जब व्रत लेने घर से निकलें तब शुभ शकुन हो, छत्र, ध्वज, चामर वगैरह प्रशस्त द्रव्यों का दर्शन हो...और कहीं से भी हवा में सुगन्ध महसूस हो। यह सब स्वाभाविक होना। कृत्रिम नहीं। हर्ष और उल्लास का वातावरण होना चाहिये। उससे

व्रतपालन के भावों में दृढ़ता आती है। वातावरण का मनुष्य के भावों के साथ सम्बन्ध है। उल्लासमय वातावरण मनोभावों को उल्लसित बनाता है, निराशामय वातावरण मनोभावों को मद···निर्बल बनाता है इसलिये निमित्त-शुद्धि का, शुभ कार्यों में विशेष महत्त्व माना गया है।

दिशाशुद्धि :

दिशाओं की शुद्धि देखनी चाहिये। ऐसे मंगलकारी, कल्याणकारी कार्य पूर्वदिशा-सन्मुख अथवा उत्तरदिशा सन्मुख करने चाहिये।

दिशाओं का महत्व, प्रभाव मात्र अपने जैनधर्म में ही माना गया है, ऐसा मत समझना। भारतीय तमाम धर्मों ने दिशाओं के महत्व को माना है। अपन मात्र चार दिशायें ही नहीं मानते, दश दिशाओं को मानते हैं। दश दिशाओं के अधिष्ठायक देवों को मानते हैं। उनको 'दिक्पाल' कहते हैं और इन दिक्पालों का भी पूजन किया जाता है। ऋषिमुनियों ने अपने दिव्य ज्ञान से निर्णय किये हैं कि कौन से कार्य कौन सी दिशा में करने से सफलता प्राप्त होती है।

व्रत-महाव्रत ग्रहण करने की दो प्रशस्त दिशाएँ बतायी गयी-है-पूर्व और उत्तर! अथवा जहां पर दिशाओं की अनुकूलता मकान के कारण नहीं जमती हो तो जिस दिशा में परमात्मा जिनेश्वरदेव का मंदिर हो, उस दिशा में व्रत ग्रहण करने चाहिये। फिर वह जिनमंदिर कौन सी भी दिशा में हो।

आगारशुद्धि

पांचवी शुद्धि है आगारों की। आगार यानी अपवाद। व्रत लेने हैं यानी प्रतिज्ञायें लेनी है। इस काल में हर प्रतिज्ञा, हर व्रत-महाव्रत सापवाद होता है। कोई भी व्रत-महाव्रत निरपवाद नहीं लिया जाता है। ज्ञानी पुरुषों के संयोग-परिस्थितियां और जीवात्मा के मनोबल को देखते हुए कुछ अपवाद बताये हैं। जैसे कि ऐसे-ऐसे प्रसंग में, परिस्थिति में इस व्रत का पालन नहीं कर सको, तो भी तुम्हारा व्रत खंडित नहीं होगा। व्रतभंग नहीं होगा। बस, वहाँ पर व्रतधारी का मनोभाव व्रतपालन का होना चाहिये। कभी संयोगवश बाहर से व्रतपालन नहीं भी हो सके-तो व्रतभंग नहीं होता है। जैसे—

१. किसी सत्ताधीश की आज्ञा के परवश होकर प्रतिज्ञा का पालन न हो सके,
२. किसी जनसमुदाय के परवश होकर प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सके,
३. कोई ताड़न आदि बल प्रयोग के कारण प्रतिज्ञा तोड़नी पड़े,
४. कभी विशेष कारण से गुरु आज्ञा करे और प्रतिज्ञा छोड़नी पड़े,
५. कभी देवों के दवाब से, आग्रह से या भय से प्रतिज्ञा छोड़नी पड़े,

६. कभी जंगलों में ···निर्जन प्रदेश में कि जहां प्रासुक [निर्दोष] आहार-पानी की प्राप्ति दुर्लभ हो··· वहां प्रतिज्ञा का पालन न हो सके···

तो भी व्रतभंग का पाप नहीं लगता है। व्रत देते समय गुरु इन अपवादों के साथ व्रत देते हैं।

फिर भी यदि आपका मनोबल दृढ़ है, प्राण जाए तो जाए, पर मेरी प्रतिज्ञा का भंग नहीं करुंगा,'' ऐसा आपका निश्चय है, तो आपको अपवादों का आलंबन लेना आवश्यक नहीं है। हाँ होते हैं ऐसे नरवीर कि जो देवों के बलप्रयोग के सामने भी नहीं झुकते हैं वे मरना पसन्द करते हैं परन्तु व्रत तोड़ना पसन्द नहीं करते।

वास्तव में सम्यग्दर्शन-गुण आत्मा में प्रगट होने पर, आत्मा प्राणों से भी व्रतों को ज्यादा महत्व देती है। व्रत बचाने के लिये प्राणों का त्याग करना पड़े तो करती है परन्तु प्राण बचाने के लिये व्रतों का त्याग नहीं करती है।

यह नियम सार्वत्रिक नहीं है। विरल आत्मा में ही ऐसा मनोबल होता है। इसलिये ज्ञानीपुरुषों ने अपवाद बताये! अपवादमार्ग का अवलंबन लेने से व्रतभंग नहीं होता है।

उत्सर्ग और अपवाद दोनों मिलकर मोक्षमार्ग :

उत्सर्गमार्ग-मूलमार्ग पर चलने के विशुद्ध भाव हृदय में रखते हुए, शास्त्रनिर्दिष्ट पद्धति से अपवादमार्ग का सेवन किया जाय, तो कोई दोष नहीं है। दिखने में भले व्रतभंग दिखता हो, फिर भी वह भंग नहीं कहलाता है। जिस प्रकार पदयात्री चलते चलते थक जाता है तो किसी वृक्ष की छाया में बैठता है, कोई पाषाण शिला पर विश्राम करता है, कहीं रात्रि व्यतीत करता है··· फिर भी उस की पदयात्रा भंग नहीं होती है। चूंकि वह बैठता है चलने के लिये! वह विश्राम करता है चलने के लिये, वह सोता है तो भी चलने के लिये! चलने का भाव अखंड है तो बैठना-सोना वगैरह दोष नहीं कहे जा सकते।

वैसा मोक्षयात्रा करने का भाव अखंड है, व्रतपालन का भाव अखंड है और कभी संयोगवश (जो छः कारण बताये वे) व्रत का पालन नहीं सके तो भी व्रतभंग नहीं कहा जायेगा। सावधानी रखनी पड़ती है अपवादों के सेवन में। इसलिए उत्सर्ग-अपवाद के ज्ञाता ज्ञानी पुरुषों का मार्गदर्शन लेकर अपवाद का सेवन करना चाहिये।

अब एक विशेष विधि बताकर ग्रन्थकार प्रस्तावना पूर्ण करते हैं और अणुव्रत बताने का प्रारम्भ करते हैं।

तथा उचितोपचारश्च ।

व्रतमय धर्मग्रहण करने का प्रसंग, शादी के प्रसंग से भी ज्यादा महत्वपूर्ण समझना चाहिये आप लोगों को। शादी तो भवसागर में डुबानेवाली है न? व्रतमय धर्म भवसागर से तारनेवाला! तारनेवाले प्रसंग को आनन्द से उत्सव से मनाना चाहिये। इसलिये ग्रन्थकार आचार्यदेव 'उचित उपचार' करने को कहते हैं।

—परमात्मा की पुष्प, धूप, दीपक आदि से पूजा करनी चाहिये,

—गुरु महाराज को वस्त्र-पात्र पुस्तकादि प्रदान करने चाहिये,

—साधर्मियों का भोजन-वस्त्रादि से सत्कार करना चाहिये,

—दीन-अनाथ-अपंग लोगों की भोजनादि से सेवा करनी चाहिये।

इन सब का प्रेम से, आदर से, उमंग से सत्कार करना चाहिये।

(क्रमशः)

वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह

(पूर्वानुवृत्ति)

उसने उत्तर दिया—चारुदत्त श्रेष्ठी की परम रूपवती कन्या गंधर्वदत्ता गंधर्ववेद में पारंगत है। गंधर्वविद्या में अनुरक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उसे प्राप्त करने के लिए जी-जान से प्रयत्नशील हैं। इस विद्या में जो विजयी होगा वह उसे पायेगा। प्रत्येक महीने विद्वत्सभा में प्रतियोगिता आयोजित की जाती है। कल प्रतियोगिता का दिन था, अब फिर से एक महीने बाद होगी।

पता लगा कि सुग्रीव और जयग्रीव नामक गन्धर्वविद्या के महान् पंडित वहाँ रहते हैं।

सुग्रीव के घर पहुँच, स्कंदिल मूर्ख की भाँति विलाप करने लगा। उसने अपना परिचय देते हुए निवेदन किया कि वह गंधर्वविद्या सीखने के लिए आया है।

उपाध्याय ने उसे मूर्ख कहकर उसकी अवज्ञा की।

स्कंदिल ने ब्राह्मणी को प्रसन्न करने के लिए उसे रत्नों के कड़े भेंट किये। ब्राह्मणी ने आश्वासन दिया कि उसे भोजन, वस्त्र और रहने-सोने की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। स्कंदिल ने गंधर्वविद्या सीखने की बात दोहरायी।

ब्राह्मणी ने अपने पति से उसे विद्या सिखाने की सिफारिश की। उपाध्याय ने कहा—वह वज्रमूर्ख है, विद्या क्या सीखेगा? ब्राह्मणी ने उत्तर दिया—हमें मेधावियों से क्या लेना-देना। अब देखो यह कड़ा!

तुम्बुरु और नारद की पूजा की गयी और विद्यार्थी को एक वीणा दे दी गयी। उसे बजाने को कहा गया। किन्तु उसके कर स्पर्श से आहत होकर वह टूट गयी। उपाध्याय ब्राह्मणी से कहने लगा—देख लो अपने पुत्र की कला! ब्राह्मणी ने कहा—इसकी तंत्रियां पुरानी और कमजोर थीं, दूसरी स्थूल तंत्रियों वाली वीणा मंगाकर दो। धीरे-धीरे सब सीख जायेगा।

शिष्यों ने वीणा में स्थूल तंत्रियां लगाई। उपाध्याय ने धीरे-धीरे बजाने को कहा। उसे एक गीत बजाने को दिया।

शिष्यों से स्कंदिल ने पूछा—क्या वह इभ्यकन्या इस गीत को जानती है? उत्तर मिला—नहीं। वसुदेव ने कहा—तो इस गीत से मैं उसे जीत लूँगा। शिष्य हँसने लगे।

उत्सव का समय आ पहुँचा। उपाध्याय अपने शिष्यों को लेकर चले। स्कंदिल से फिर कभी जाने को कहा। स्कंदिल ने निवेदन किया—गुरुजी! यदि इस प्रतियोगिता में कन्या को अन्य किसी ने जीत लिया तो फिर मेरा विद्या सीखना ही व्यर्थ जायेगा। मैं भी जाना चाहता हूँ लेकिन गुरुजी ने जाने नहीं दिया।

शिक्षार्थी ने दूसरा कड़ा ब्राह्मणी को भेंट किया। ब्राह्मणी ने कहा—चिंता मत कर; तू उत्सव में सम्मिलित हो और विजयी बनकर लौट।

वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो स्कंदिल चारुदत्त की सभा में पहुँचा। सभा में विद्वान् आसनों पर विराजमान थे और शेष जन भूमि पर बैठे हुए थे।

शिष्यों समेत बैठे हुए उपाध्याय ने शंकित मन से उस पर दृष्टिपात किया।

स्कंदिल ने सभा में प्रवेश किया। सभागार देखकर उसने कहा—विद्याधर लोक में ही ऐसा सभागार हो सकता है, इस लोक में तो सम्भव नहीं! यह सुनकर उसे भी बैठने के लिए आसन दिया गया! लोग आश्चर्यचकित नयनों से उसे देखने लगे।

भित्ति पर चकित हस्तियुगल को देखकर उसने चारुदत्त श्रेष्ठी से कहा—श्रेष्ठी! चित्रकारों ने इसे अल्पायु क्यों चित्रित किया?

श्रेष्ठी—क्या तुम चित्र देखकर चित्र की आयु की भी परीक्षा कर सकते हो!

उसने परीक्षा करके अपनी बात प्रमाणित की। सभा के लोग आश्चर्य चकित रह गये। उपाध्याय भी विस्मित हुए बिना न रहा।

गन्धर्वदत्ता यवनिका के पीछे बैठी। बीणा बजाने के लिए कोई आगे नहीं आ रहा था।

चारुदत्त ने घोषणा की यदि कोई गायन के लिए तैयार नहीं तो गंधर्वदत्ता वापिस जा रही है।

कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद विद्वानों ने कहा—ठीक, जा सकती है।

इस समय शिक्षार्थी ने उठकर कहा—नहीं, उसे जाने की आवश्यकता नहीं। उसकी कला की परीक्षा की जाये।

दर्शकों ने उस पर दृष्टिपात किया। वे कहने लगे—यह कोई भूमिगोचर नहीं, कोई देव अथवा अति प्रगल्भ तेजस्वी रूपवान विद्याधर प्रतीत होता है।

श्रेष्ठी के आदेश से वीणा मँगवाई गई। उसे स्कंदिल के हाथ में दी। स्कंदिल ने कहा—इसके गर्भ में कुछ है, बजाने के योग्य यह नहीं है।

उसने वीणा पानी में भिगोई और उसमें से बाल निकालकर दिखा दिया।

दूसरी मंगवाई गई। उसने कहा—जंगल की अग्नि से जले हुए काष्ठ से यह तैयार की हुई है, अतः इसे बजाने से इसमें से कर्कश आवाज निकलेगी।

तीसरी लाई गई। वह जल में डूबे हुए काष्ठ से तैयार की गई थी, अतः वीणावादक ने कहा कि उसमें से गम्भीर आवाज निकलेगी। उसे भी अस्वीकार कर दिया। परिषद् आश्चर्यचकित रह गयी।

तत्पश्चात् चन्दन से चर्चित सुगन्धित पुष्पों की माला से अलंकृत सप्त स्वर वाली तंत्री मँगवाई गई। वीणावादक ने उसकी प्रशंसा की।

उसने कहा कि यह आसन मेरे योग्य नहीं।

बहुमूल्य आसन बिछाया गया। श्रेष्ठी ने विष्णुगीतिका बजाने का अनुरोध किया। उसने साधुओं के गुणकीर्तन में गायाजाने वाला विष्णुमाहात्म्य गीत सुनाना आरम्भ किया।

विष्णुगीतिका की उत्पत्ति—हस्तिनापुर में राजा पद्मरथ और रानी लक्ष्मीमती के विष्णु और महापद्म नामक दो कुमार। विष्णुकुमार की प्रव्रज्या। महापद्म राजा का पुरोहित नमुचि। वह जैन साधुओं द्वारा वाद में पराजित। मन-ही-मन साधुओं से प्रद्वेष। राजा को प्रसन्न कर राजापद की प्राप्ति। हस्तिनापुर में साधुओं का चातुर्मास। नमुचि द्वारा उन्हें राज्य से बाहर चले जाने का आदेश। विष्णुकुमार को आकाशगामी विद्या की सिद्धि। संघ पर उपद्रव होने के कारण उन्हें आमंत्रित किया गया। विष्णुकुमार ने नमुचि पुरोहित को बहुत समझाया, लेकिन उसने एक न सुनी।

विष्णुकुमार ने नमुचि से एकांत स्थल में तीन विक्रम (पैर) भूमि मांगी। उन्होंने कहा कि साधु इस प्रदेश में रह कर प्राणत्याग कर देंगे, क्योंकि उनके लिए वर्षाकाल में गमन करना निषिद्ध है। इससे साधुओं के वध करने की नमुचि की प्रतिज्ञा भी पूरी हो जायेगी। नमुचि ने तीन पैर भूमि प्रदान करने की स्वीकृति दे दी।

रोष से प्रज्वलित विष्णुकुमार मुनि का शरीर बढ़ने लगा। उन्होंने अपना एक चरण उठाया। नमुचि पैरों में गिर पड़ा। वह अपने अपराधों की क्षमायाचना करने लगा। विष्णुकुमार ने ध्रुपद पढ़ा और क्षण भर में दिव्य रूप धारण कर लिया। पृथ्वी कम्पित हो उठी। विष्णु ने अपना दाहिना पग मंदर पर्वत पर स्थापित किया। इसे उठाते—समय समुद्र का जल क्षुब्ध हो उठा। इन्द्र का आसन चलायमान हो गया। देवों को सम्बोधित कर के इन्द्र ने कहा—सुनो, नमुचि पुरोहित के अनाचरण के कारण प्रकुपित विष्णु मुनि त्रैलोक्य को भी निगल जाने में समर्थ हैं, अतएव इन्हें अनुनय-विनयपूर्वक गीत और नृत्य के उपहार से शीघ्र ही शान्त करना चाहिए। तुंबरू और नारदजी ने विद्याधरों पर अनुग्रह करके उन्हें गन्धर्वकला की ओर प्रेरित किया। विष्णु-गीतिका से

उपनिवद्ध, सप्तस्वर तंत्री से निःसृत और मनुष्य लोक में दुर्लभ गांधार स्वरसमूह को उन्हें धारण कराया।

"हे साधुओं में श्रेष्ठ! आप शान्ति धरें! जिनेन्द्र भगवान् ने क्रोध का निषेध किया है। जो क्रोधशील होते हैं, उन्हें बहुत समय तक संसार में परिभ्रमण करना होता है।"[1]

इस गीतिका को विद्याधरों ने ग्रहण किया।

गन्धर्वदत्ता और वीणावादक ने वीणा बजाकर गांधर ग्राम की मूर्छना से, एकचित्त होकर, तीन स्थान और क्रिया से शुद्ध, ताल; लय और ग्रह की समतापूर्वक विष्णुगीतिका का गान किया। नागरिकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। श्रेष्ठी ने प्रसन्न मन से इस कार्य के लिए नियुक्त आचार्यों से निर्णय सुनाने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा—जो इस बिटिया ने गाया है, वही इस ब्राह्मण ने बजाया है, और जो इस ब्राह्मण ने गाया है वही बिटिया ने बजाया है।

यवनिका हटा दी गयी।[2] नागरकों ने उत्सव समाप्त होने की घोषणा की। प्रतियोगिता समाप्त हो गयी। गन्धर्वदत्ता को पति की प्राप्ति हुई। श्रेष्ठी ने नागरकों का सम्मान कर उन्हें विसर्जित किया।

चारुदत्त श्रेष्ठी ने स्कंदिल से प्रार्थना की—आपने अपने दिव्य पुरुषार्थ के बल से गन्धर्वदत्ता को प्राप्त किया है। अब इसका पाणिग्रहण कर अनुगृहीत करें। लोकश्रुति[3] है—ब्राह्मण की चार भार्याएँ हो सकती हैं—ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी, वैश्या और शूद्री। यह आपके अनुरूप है और कुछ बातों में विशिष्ट भी हो सकती है।

स्कंदिल का खूब आदर-सत्कार किया गया। राजा के अनुरूप बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से उसे अलंकृत किया गया। गन्धर्वदत्ता शृङ्गार-प्रसाधन से सज्जित हुई। जैसे लक्ष्मी को कुबेर के समीप बैठाया जाता है, वैसे ही कुल वृद्धाओं ने गन्धर्वदत्ता को उसके समीप लाकर बैठाया।

---

१. उवसम साहुवरिट्ठया! न हु कोवो वण्णिओ जिणिंदेहिं।
हुंति हु कोवणसीलया, पावंती वहूणि जाइयव्वाइं॥

चित-संभूत नामक मातंक मुनियों की कथा में उच्चवर्गीय लोगों से अपमानित हुए संभूत की क्रोधाग्नि को शांत करने के लिए चित्त उसके पास पहुंचा है।

उत्तराध्ययन टीका, १३, पृ० १८६ अ।

२. तुलनीय, उदयन और वासवदत्ता के आख्यान से।

३. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में यहाँ मनुस्मृति का प्रमाण उद्धृत है।

श्रेष्ठी ने निवेदन किया—स्वामी ! कुल-गोत्र जान कर आप क्या करेंगे ? या तो आप अग्नि में हवन करें या मेरी पुत्री को करने दें।

पाणिग्रहण की क्रिया सम्पन्न हुई। दोनों ने गर्भगृह में प्रवेश कर रात्रि व्यतीत की।[१]

(आ) **बृहत्कथाश्लोक संग्रह** : नरवाहनदत्त और सानुदास की कन्या गंधर्वदत्ता का विवाह : नरवाहनदत्त किसी अज्ञात देश में आया, जहां उसने घंटियों की आवाज करते हुए गोमंडल को देखा। पूर्व दिशा में सूर्य का उदय हो रहा था और भ्रमरों का गुंजारव सुनाई पड़ रहा था। वह एक उद्यान में आया। उद्यान में उच्च शिखरवाला एक मन्दिर था। द्वारपाल ने अन्दर जाने से उसे रोका। वीणा बजाते हुए उसने मन्दिर में प्रवेश किया। वहां बैठा हुआ नागरकों का अधिपति, अमितगति के वीणावादन के श्रवण में अनुरक्त था। उसने उठकर अमितगति को अपने शिलासन पर बैठाया। उसके पैरों का संवाहन किया और पाद प्रक्षालन पूर्वक अर्घ्य प्रदान किया।

नरवाहनदत्त ने अपना परिचय देते हुए कहा—वह वत्सदेश निवासी ब्राह्मण है। मंत्रवादियों के मुख से सुन कर उसने किसी यक्षी की साधना की। यक्षी के साथ वह पर्वत और वनों में भ्रमण कर रमण करने लगा। एक बार उसके मन में विचार आया कि पातालमन्त्र की आराधना कर असुरी के साथ रमण करना चाहिए। यक्षी को इस बात का पता लगा तो ईर्ष्यावश उसने उसे भूमि पर ला पटका।

नागरकेश्वर ने कहा—यह प्रदेश अंग जन-पद की राजधानी चम्पा है। मेरा नाम दत्तक है और वीणा प्रिय होने से मैं वीणादत्तक नाम से प्रख्यात हूं।

वत्सदेशवासी ब्राह्मण ने वीणादत्तक के साथ प्रवहण में सवार हो चम्पा के के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में वीणावादन में अनुरक्त हलवाहों को देखा। वटवृक्ष के नीचे बैठे हुए ग्वाले बेसुरी वीणा बजा रहे थे। दोनों वणिक्पथ पर पहुंचे। नगरद्वार के पास वीणा के विभिन्न अवयवों से भरी हुई गाड़ियों को देखा। ये गाड़ियां वीणा अवयवों की बिक्री के लिए लायी गयी थीं। बढ़ई, लुहार, कुम्हार और वरुड वीणावादन में व्यस्त थे।

यान से उतरकर ब्राह्मण ने वीणादत्तक के गृह में प्रवेश किया। वहां मर्दनशास्त्र के विशेषज्ञों और सूदशास्त्र में निष्णात रसोइयों ने उसकी सेवा-सुश्रूषा की। दत्तक के परिवार के साथ आनन्दपूर्वक उसने भोजन किया। ताम्बूल आदि से मुखशुद्धि की गयी।

---

१. पृ० १२६-३३

ब्राह्मण ने दत्तक से पूछा—इस नगरी में वीणा के इतने अधिक रसिक लोग क्यों दिखाई देते हैं ?

वीणादत्तक—यहाँ समस्त गुणों की खान त्रैलोक्यसुन्दरी गन्धर्वदत्ता रहती है। उसका पिता सानुदास वणिक्पति उसे किसी को नहीं देना चाहता। उसने घोषणा की है कि जो कोई उसे वीणावादन में पराजित करेगा, वही उसके पाणिग्रहण का अधिकारी हो सकता है। चम्पा में कोई भी ऐसा नगरवासी न मिलेगा जो उसका पाणिग्रहण न करना चाहता हो। ६४ विद्वानों के समक्ष छह-छह महीने बाद, नागरिकों की गायन-प्रतियोगिता होती है। बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक कोई उसे वीणावादन में पराजित नहीं कर सका।

ये बातें हो ही रही थीं कि वेत्रधारी दो वृद्ध पुरुषों ने आकर निवेदन किया कि श्रेष्ठी ने कहलवाया है कि यदि मित्रों की गोष्ठी तैयार हो तो उत्सव का आयोजन किया जाये।

उत्सव की तैयारी शुरू हो गयी।[१]

वत्सदेशवासी ब्राह्मण ने जानना चाहा कि क्या वह गन्धर्वदत्ता के दर्शन कर सकता है ? उत्तर में कहा गया है कि कोई अगान्धर्व उसे नहीं देख सकता और यदि देखना हो तो गांधर्व विद्या की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

कठोर स्वर वाले श्रुतिस्वरज्ञान से हीन भूतिक नामक दूर्भग वीणाचार्य को बुलाया गया, लेकिन इस विकृत नर-वानर के दर्शन कर ब्राह्मण को लगा कि न उसे गन्धर्वविद्या की शिक्षा प्राप्त करना है और न गन्धर्वदत्ता ही लेना है। इतना ही नहीं, इस प्रकार का शिष्यत्व प्राप्त कर सारे राज्य का लाभ भी निंद्य है। खैर, वीणादत्तक ने वीणाचार्य को आसन पर बैठाकर निवेदन किया—महाराज ! इस यक्षीपति ब्राह्मण को नारदीय (गांधर्व) विद्या सिखाने का अनुग्रह करें। वीणाचार्य ने उत्तर दिया—यह अभिमानी हैं, मेरी अवज्ञा करता है और फिर दरिद्र होने के कारण एक कौड़ी तक देने को इसके पास नहीं है। विद्या या तो गुरु की सुश्रूषा से सीखी जाती है या फिर धन खर्च करने से। इन दोनों में से इसके पास एक भी नहीं। दत्तवाहक ने आचार्य से निवेदन किया कि यक्षीकामुक को कोई दरिद्र नहीं कह सकता। वह यक्षीकामुक का दास है, और चाहिए तो सुवर्णशत दिए जा सकते हैं।

तत्पश्चात् सरस्वती की अर्चना कर दुर्व्यवस्थित तंत्रीयुक्तवीणा उसे दी गयी। उसने उसे उलटी तरफ से गोद में रक्खी। यह देखकर आचार्य ने दत्तक की ओर देखकर कहा कि यह आदमी यह भी नहीं जानता कि वीणा कैसे

---

१. १६. १—१३, पृ० १९१—९९ (गन्धर्वदत्तालाभे चम्पाप्रवेश नामक सर्ग)।

पकड़नी चाहिए, फिर इस मंदबुद्धि को कैसे शिक्षा दी जा सकती है। दूसरा वाद्य उसे दिया गया बजाते हुए उसकी चार-पाँच तंत्रियाँ टूट गई। आचार्य ने दत्तक से कहा कि वीणा सीखकर यह क्या करेगा।

लेकिन तंत्री के छिन्न हो जाने पर भी यक्षीकामुक कोमल स्वर से वीणा बजाने लगा। दत्तक आदि को आश्चर्य हुआ। आचार्य भय, क्रोध, लज्जा और विस्मय के कारण निष्प्रभ होकर देखते रह गये। आचार्य दक्षिणा लेकर वहाँ से चले गये।

एक दिन रात्रि के समय सोते हुए यक्षीकामुक की नजर वीणादत्तक की खूंटी पर लटकी हुई वीणा पर गई। यक्षीकामुक उसे बजाने लगा। उसका मधुर स्वर सुनकर लोग आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे कि जान पड़ता है कि वीणादत्तक के घर में स्वयं सरस्वती वीणा बजाने के लिए अवतरित हुई है।

प्रातःकाल नमस्कार कर दत्तक ने यक्षीकामुक को सूचना दी कि नागरक अपने-अपने यानों पर उपस्थित हैं, उनके साथ उसे भी उत्सव में चलना चाहिए। यक्षीकामुक आगे-आगे तथा उसके पीछे दत्तक और नागरकों ने पैदल ही प्रस्थान किया।

उन्होंने गृहपति सानुदास के गृह में प्रवेश किया। पहले कक्ष में महापट्टोर्ण से वेष्टित दत्तक आदि ६४ नागरकों के लिए ६४ आसन बिछे हुए थे। यक्षीकामुक के लिए आसन नहीं था। दत्तक ने अपना आसन उसे दे दिया। दत्तक को अन्य आसन दिया गया। गणिकाओं का आगमन हुआ। स्त्रियाँ परस्पर वार्तालाप कर रही थीं कि सानुदास ने अपनी कन्या के लिए वीणावादन में विजयी होने की शर्त रखकर बड़ा अनर्थ कर दिया है, क्योंकि यदि रूप की होड़ लगती तो निश्चय ही यक्षीकामुक उसे प्राप्त कर लेता। सबने सभा में प्रवेश किया। श्रेष्ठी द्वारा नागरकों का स्वागत किया गया। कंचुकी ने नागरकों को गन्धर्वदत्ता को निर्देश देने का अनुरोध किया। किसी से कोई उत्तर न पाकर जब वह वापिस जाने लगा तो यक्षीकामुक ने उसे बुलाकर कहा कि श्रेष्ठीकन्या सभा में उपस्थित हो। दत्तक का म्लान मुख खिल उठा। यक्षीकामुक की ओर देखकर उसने प्रसन्नता व्यक्त की।

यवनिका को हटाकर, कंचुकियों से आवृत्त गन्धर्वदत्ता (वर्णन) ने सभागृह में प्रवेश किया। कंचुकी ने दक्षिण हाथ उठाकर श्रेष्ठी वचन की घोषणा की कि जो कोई वीणा बजा सकता हो, वह आगे आये। वीणादत्तक से अनुरोध किया गया लेकिन उसने सिर हिलाकर अनिच्छा प्रकट की। किसी अन्य नागरक ने वीणावादन किया जिसे सुनकर 'साधु-साधु की आवाज सुनाई दी। लेकिन जब गन्धर्वदत्ता ने सभाजनों के समक्ष सुमधुर गान किया तो सब रंग फीका पड़ गया।

विष्णुगीतिका—पूर्वकाल में वामन रूप धारण कर बलि को छलते समय विष्णु भगवान् ने इस लोक को तीन पदों से आक्रान्त कर लिया था। गंधर्व जनों से सेवित विश्वावसु नामक गन्धर्व ने आकाश में विहार करते समय उनकी प्रदक्षिणा की। उसने स्वयं गरुड़ध्वज विष्णु की स्तुति करते हुए नारायणस्तुति नामक अद्भुत गीत गाया। इस गन्धर्व से नारद ने, नारद से वृत्रासुर, इन्द्र ने, इन्द्र से अर्जुन ने, अर्जुन से विराटसुता उत्तरा ने, उत्तरा से परीक्षित ने और परीक्षित से जनमेजय ने इसे सीखा। जनमेजय से यक्षीकामुक के पिता ने और अपने पिता से यक्षीकामुक ने इस गांधारग्राम की शिक्षा प्राप्त की।

यक्षीकामुक ने गोष्ठी में प्रवेश किया। गन्धर्वदत्ता का आगमन। कंचुकी द्वारा लायी हुई वीणा को देखकर यक्षीकामुक ने कहा—इसके उदरभाग में लतातन्तु मौजूद है इससे यह जड़ हो गयी है। दूसरी वीणा लायी गयी, लेकिन वह केशदूषित तंत्री से युक्त थी। तत्पश्चात् सुगन्धित कुसुमों से अर्चित कच्छ-पाकार फलक वाली वीणा लेकर सानुदास स्वयं उपस्थित हुआ। यक्षीकामुक को प्रदक्षिणा कर उसे वीणा दी गयी। एक अन्य वीणा गन्धर्वदत्ता को दी। दोनों ने वीणावादन किया। यक्षीकामुक ने मन्द-मन्द एक दिव्य गीत बजाया। गन्धर्वदत्ता के कोमल गीत को श्रवण कर सभाजन मानों मूर्च्छित हो गये। चेतना प्राप्त करने के पश्चात् कंचुकी ने उनसे प्रश्न किया—आप लोग निष्पक्ष होकर निर्णय सुनायें कि जो गन्धर्वदत्ता मे गाया है, वही यक्षीकामुक ने बजाया है या नहीं ? इसपर ऊपर हाथ उठाकर, उच्च स्वर से सभासदों ने घोषणा की कि वीणावादक कन्या को प्राप्त करने का अधिकारी है।

सभाविसर्जित हो गयी। सानुदास वीणादत्तक के साथ यक्षीकामुक को घर के भीतर लिवा ले गया। यक्षीकामुक को संबोधन करके उसने कहा—हे यक्षीकामुक ! हम सब आपके दास हैं। आपने कठिन विपत्ति से हमारा उद्धार किया है। फिर वह कहने लगा—आज का दिन शुभ दिन है, गन्धर्वदत्ता का पाणिग्रहण करने का अनुग्रह करें। यक्षीकामुक ने उत्तर दिया—मैं पवित्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूं, असवर्ण कन्या से कैसे विवाह कर सकता हूं ?

सानुदास—यह कन्या सवर्णा है, सवर्णा ही नहीं, उत्कृष्ट भी हो सकती है। आप विश्वस्त हो पाणिग्रहण करें। मनु महराज ने कहा है—अपने से निम्न वर्ण की भार्या को स्वीकार करता हुआ ब्राह्मण दोष का भागी नहीं होता।

पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ।[१]

---

१. वही, गन्धर्वदत्ताविवाह, १७वां सर्ग, पृ० २००—२१७

६ पुष्करमधु का पान

(अ) **वसुदेवहिंडी :** चारुदत्त की माँ के भाई सर्वार्थ की कन्या मित्रवती का चारुदत्त के साथ पाणिग्रहण ।[१]

चारुदत्त का अपने मित्रों के साथ उद्यान-गमन । प्यास लगने के कारण एक वृक्ष के नीचे विश्राम । चारुदत्त का मित्र हरिशिख पास के पोखर में उतरा । कोई आश्चर्यकारी वस्तु देखने के लिए उसने चारुदत्त को बुलाया । उसने पोखर में लगे हुए सुन्दर कमलों के अपूर्व रस की ओर चारुदत्त का ध्यान आकर्षित किया । गोमुख ने बताया कि देवों द्वारा उपभोग्य वह पुष्करमधु है । उसे कमलिनी के पत्तों में ग्रहण कर लिया ।

प्रश्न हुआ कि मनुष्यलोक में दुर्लभ वह पुष्करमधु किसे दिया जाये ? क्या राजा को दिया जाये ? राजा प्रसन्न होकर शायद आजीविका का प्रबन्ध कर सके । लेकिन राजा के दर्शन दुर्लभ होते हैं और वह जल्दी प्रसन्न नहीं होता । तत्पश्चात् अमात्य और नगररक्षक का नाम सुझाया गया । अंत में समस्त कार्यों के साधक चारुदत्त को प्रदान करने का निश्चय किया गया चारुदत्त ने कहा कि क्या वे नहीं जानते कि वह मधु, मांस और मद्य का सेवन न करने वाले कुल में उत्पन हुआ है ? गोमुख ने उत्तर दिया—मित्र ! हम जानते हैं, लेकिन यह मद्य नहीं, देवों के योग्य अमृत है । पुष्करमधु का पान करने से चारुस्वामी की तृप्ति हुई मित्रों ने चारुदत्त को विश्राम करने के लिये कहा और वे पुष्पों का चयन करने चल दिये ।

चारुदत्त को मधुरस का नशा चढ़ने लगा । अशोक वृक्ष के नीचे उसे एक सुन्दर युवती दिखायी दी । वह कोई अप्सरा थी और देवाधिपति इन्द्र ने चारुदत्त की सेवा में उपस्थित रहने के लिए उसे भेजा था । अप्सरा ने बताया कि देवता लोग सबको दर्शन नहीं देते, लेकिन वे सबको देख सकते हैं । अतः चारुदत्त के मित्र अप्सरा को नहीं देख सकते और अप्सरा के प्रभाव से चारुदत्त को भी देखने में असमर्थ हैं !

मद के कारण चारुदत्त के पैर लड़खड़ाने लगे । अप्सरा ने अपने दाहिने हाथ से चारुदत्त की भुजाएँ और उसका सिर थाम लिया । चारुदत्त लड़खड़ाता हुआ उसके कण्ठ का अवलंबन लेकर चला । देव-अप्सरा के स्पर्श से उसका शरीर रोमांचित हो उठा । अप्सरा अपने विमान में बैठाकर उसे अपने भवन में ले गयी । अपनी उम्र वाली तरुणियों से वह परिवेष्ठित थी । विषयसुख भोगने

---

१. वसुदेवहिंडी पृ० १४०

के लिए उसने चारुदत्त को आमन्त्रित किया। रतिपरायण चारुदत्त निद्रादेवी की गोद में सो गया।

नशा उतरने पर आँख खुली तो उसे वसंततिलका का भवन दिखायी दिया। वसंततिलका ने कहा—मैं गणिका पुत्री वसंततिलका हूँ, कलाओं की शिक्षा मैंने प्राप्त की है। धन का मुझे लोभ नहीं, गुण मुझे प्रिय है। मैंने हृदय से तुम्हें वरण किया है। तुम्हारी माता की अनुमति से गोमुख आदि तुम्हारे मित्रों ने उद्यान में पहुँच किसी युक्ति से तुम्हें मुझे सौंप दिया था। उसके बाद वह वस्त्र बदलकर आई और हाथों की अंजलि-पूर्वक चारुदत्त से विनयपूर्वक कहने लगी—"मैं तुम्हारी सेविका हूँ, मुझे भार्या रूप में स्वीकार करो। ये देखिए, ये मेरे क्षौमवस्त्र जो मेरे कन्यापन को सूचित करते हैं। मैं तुम्हारी जीवनपर्यन्त उपकारिणी बनकर रहूँगी।"

चारुदत्त ने वसंततिलका को भार्या रूप में स्वीकार किया। उसके साथ रहकर वह स्वच्छन्द विहार करने लगा। उसकी माँ कुछ-न-कुछ उपहार आदि उनके लिए हमेशा भेजती रहती। इस प्रकार विषयसुख का उपभोग करते हुए १२ वर्ष व्यतीत हो गये।[१]

(आ) **वृहत्कथाश्लोकसंग्रह** : एक उपवन में पहुँच ध्रुवक ने सानुदास के लिए माधवी और आम्र वृक्ष के पल्लवों से उच्च आसन तैयार किया। अपनी प्रियाओं के हाथों से मधुपान करते हुए मित्रगण उपस्थित थे। वसन्तराग गाया जा रहा था, वेणुतंत्री का मधुर शब्द सुनाई दे रहा था, तथा भौरों का गुंजार और कोकिल की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। कर्दम और शैवाल से लिपटा हुआ कोई पुरुष कमलपत्र में पुष्करमधु लिये हुए सरोवर से निकला। एक मित्र ने कहा—अरे मूर्ख! यह पुष्करमधु क्या, तू अनर्थ की जड़ ले आया है। यदि सब मित्र इसका पान करने लगें तो एक-एक बून्द भी उनके हिस्से में न आये। उन्होंने सोचा कि राजाओं के लिए दुर्लभ इस पुष्करमधु को राजा को क्यों न दे दिया जाय। लेकिन राजा से और कोई माँग लेगा, वे रत्न के लोभी जो होते हैं। पाप भावना से प्रोत्साहित हुआ राजा हमारा सर्वस्व हरण कर सकता है, अतः उसे देना ठीक नहीं! इसमें अधिक रस वाला स्वाद है, मद्य यह नहीं है, इसलिए सानुदास ही क्यों न इसका पान करे? पत्पश्चात् मित्रों के अनुरोध पर, सानुदास ने पुष्करमधु का पाम कर लिया। यह मधु अत्यन्त स्वादिष्ट था, मानों कोई अपूर्व रस हो; अमृत भी उसके सामने फीका जान पड़ता था। रस की गन्ध से सानुदास को प्यास लगी। उसके पान करने से उसे चक्कर आने लगा।

(क्रमशः

---

१. वही. पृ० १४२-१४३

राजा-सम्प्रति

पाँचवाँ परिच्छेद

पूर्वानुवृत्ति

इस महा उत्पात के शान्त हो जाने पर समस्त मानव समुदाय इस प्रकार प्रसन्न एवं हर्षित हुआ, मानो उसका पूनर्जन्म ही न हुआ हो ! सब लोग आनन्द-पूर्वक खानपान करके तथा सुन्दर वस्त्र धारण करके परस्पर प्रणाम करते हुए क्षेम-कुशल पूछने लगे। वह दिन कार्तिक शुक्लपक्ष की प्रतिप्रदा का था। अतएव तभी से इस दिन मानव समाज में मुख्यतः जैन समाज में प्रणाम करने और नवीन वस्त्र पहनने एवं मन चाहा भोजन करने का रिवाज चल पड़ा जो आज भी संसार में प्रचलित है। इस विष्णुकुमार के दृष्टान्त से अन्य मतवालों ने अपनी कथा रचकर अपने शास्त्रों में एक पुराण का निर्माण कर डाला है। जिसमें बताया गया है कि "सौ यज्ञ करने वाले बलिराजा को भगवान ने वामन रूप धारण करके छला और उसे पाताल में भेज दिया।" इस रूप में वह पुराण प्रसिद्ध हो गया।

इन्हीं मुनिसुव्रतस्वामी के समय में राम-लक्ष्मण एवं रावण आठवें बलदेव और वासुदेव तथा प्रति वासुदेव हुए हैं। राम-लक्ष्मण के समय में गौतम नाम के एक ऋषि हुए हैं। कदाचित् न्याय शास्त्र के कर्त्ता भी यही गौतम हो सकते हैं। मुनिसुव्रतस्वामी के मोक्ष गमन के बाद छह लाख वर्ष बीतने पर इक्कीसवें नमिनाथ का मोक्ष गमन जानना चाहिए। इन नमिनाथ के समय में दसवें हरिषेण नाम के चक्री हुए और उनके शासन में 'जय' नाम के तीन हजार वर्ष की आयुष्यवाले ग्यारहवें चक्रवर्ती हुए।

इक्कीसवें नमिनाथ के मोक्ष गमन के पाँच लाख वर्ष पश्चात् नेमिनाथ का मोक्षगमन समझना चाहिए। नेमिनाथ के समय में अन्तिम, वासुदेव बलदेव प्रति वासुदेव, श्रीकृष्ण, बलभद्र और जरासन्ध हुए। इन्हीं के समय में वेदव्यास ऋषि जिन्होंने वेदों की रचना की। जो कि आज संशोधन-परिवर्तन के साथ प्रचलित हैं। शेष रहे हुए इनके बनाये वेद तो ऋषभदेव के समय से नवें तीर्थंकर के समय तक रहे' उसके बाद संघ विच्छेद होने से ब्राह्मण पण्डितों ने नयी-नयी श्रुतियाँ रचकर अपने सिद्धान्त प्रचलित किये। इसी कारण तबसे संसार में संयति के बदले असंयति की पूजा आरम्भ हुई और वह आज तक प्रचलित है। उनके

पश्चात् दसवें शीतलनाथ तीर्थंकर हुए, किन्तु उनका सत्योपदेश उन ब्राह्मण पण्डितों ने स्वीकार नहीं किया। तभी से ये लोग जैनों के विपरीत बन गये और भोले भाले लोगों को भरमाकर स्वयं को गृहस्थ गुरु के रूप में जगत् में पुजवाने लगे। श्राद्ध-दान आदि में उत्तम पात्र अपने आपको बतलाकर संसार में याचना करते हुए द्रव्य एकत्र करने लगे। उनकी परम्परा से रचित नयी-नयी श्रुतियों को एकत्र कर व्यास ऋषि ने वेद की रचना की।

नेमिनाथ का समय उस काल में बहुत ही सुधरा हुआ माना जाता था। नेमिनाथ प्रभु को केवल ज्ञान होने के दो वर्ष बाद मोक्ष का मार्ग चालू हुआ, वह उनकी आठ पाट तक चलता रहा। एक हजार वर्ष की आयुवाले नेमिनाथ के मोक्ष गमन के पश्चात् श्री पार्श्वनाथ भगवान मोक्ष को गये। नेमिनाथ प्रभु के मोक्ष गमन के कुछ समय पश्चात् पंजाब-पाञ्चाल देश के काम्पिल्यपुर नगर में सात सौ वर्ष की आयुष्यवाले ब्रह्मदत्त नाम के बारहवें चक्रवर्ती हुए। यही इस भारतवर्ष में अन्तिम चक्रवर्ती हुए हैं। ये छह मास में ही छह खण्ड पृथ्वी पर अधिकार करके भरत क्षेत्र अधिपति हुए। इन चक्री का समय नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के बीच का था।

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ काशी के राजा अश्वसेन के कुमार थे। यह राजा अपनी परम्परा से चले आते हुए नेमिनाथ के शासन में जैन धर्म का पालन करता था। पार्श्वकुमार जब कुमारावस्था को प्राप्त हुए, उस समय कमठ नामका एक ब्राह्मण अपनी दरिद्रावस्था से उकता कर संसार-सुख की आशा से तापस हो गया था। वह घूमता हुआ अपनी तपश्चर्या से सबको आश्चर्यान्वित करने के लिए काशीनगरी में आकर जाह्नवी-गंगा के तट पर पंचाग्नि तप करने लगा; किन्तु उसके अग्निकुण्ड के एक बड़े काष्ठ में जलते हुए एक विषधर-सर्प का रहस्य कोई न जान सका। अतः पार्श्वकुमार ने वहाँ आकर दया-धर्म समझाते हुए कमठ को उपदेश दिया, किन्तु इससे वह अज्ञान युक्त तप करने वाला कमठ उलटा क्रुद्ध हो उठा। तब पार्श्वकुमार ने अपने अनुचरों-द्वारा उस काष्ठ को निकलवा कर चिरवाया; और उसमें से एक अर्धदग्ध सर्प तत्काल ही लोगों के सामने बाहर निकल पड़ा; किन्तु वह मृतप्राय सर्प प्रभु के दर्शन पाकर नवकार सुनने के कारण नागकुमार के रूप में देवलोक में इन्द्र पद पाकर आज भी धरणेन्द्र शासन भक्ति के कार्य कर रहा है और उसमें भी वह श्रीपार्श्वनाथ का तो विशेष भक्त के रूप में जैन शासन में प्रसिद्ध है। जो कि जैन संघ के कष्टों को सुनते ही बारम्बार दौड़ता हुआ आकर संघ के विघ्न दूर करता है। वह धरणेन्द्र उस नाग का ही जीव है। उसे श्री प्रभु के दर्शन का ही यह फल प्राप्त हुआ है।

इसके बाद श्रीपार्श्वनाथ दीक्षा लेकर मौन पूर्वक विचरने लगे। एकदिन वे किसी तापस के आश्रम के कुंए के निकट वटबृक्ष के नीचे रात्रि के समय कायोत्सर्ग ध्यान में निमग्न थे उसी समय वह कर्मठ तापस जो आज संसार में नहीं था; अर्थात् वह अपना तापस-भव पूरा करके भुवन पति निकाय में मेघमाली नाम का देव हो गया था, वही प्रभु के प्रति अपने पूर्व वैरका स्मरण कर उन्हें उपसर्ग पहुंचाने के लिए फुर्ती से वहाँ आ पहुंचा। आते ही उसने अपनी देव-शक्ति के द्वारा विविध प्रकार के उपसर्ग किये, किन्तु इस पर भी उन उपसर्गों से भगवान विचलित नहीं हुए। उसने धूल की वर्षा की और उसके बाद दैत्यलोगों के द्वारा उपद्रव करवाये. और अन्त में थक कर मूसलधार वर्षा करके पृथ्वी को जलमय कर दिया। वह जलप्रवाह क्रमशः प्रभु के घुटने, जाँघ, और नाभि-पर्यन्त बढ़ता जाकर ठेठ नासिका पर्यन्त पहुंच गया। फिर भी भगवान तो निश्चित ही थे। भला, जो विश्व के समस्त मनोरथ पूर्ण करने की शक्ति रखते हों वे जल में कैसे डूब सकते थे ?

उस समय धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ और अवधि ज्ञान द्वारा इस उत्पात को जानकर वह अपनी देवियों के साथ तत्काल वहाँ आ पहुंचा। आते ही उसने उनके नीचे कमल की रचनाकर नाग का रूप धारण करते हुए भगवान के शरीर से लिपट कर अपने फण के द्वारा उनके मस्तक पर छत्र धारण किया। इस प्रकार जैसे-जैसे पानी बढ़ने लगा, वैसे-वैसे कमल ऊपर उठता चला गया और भगवान उसमें न डूब सके। इस प्रकार कर्मठ जल बरसाकर भी जब भगवान को विचलित न कर सका; तब धरणेन्द्र ने अवधिज्ञान-द्वारा कर्मठ का उत्पात जानकर उसकी अवहेलना की।

अन्त में कर्मठ ने भयभीत होकर अपनी माया समेट ली, और वह भगवान के चरणों में गिर पड़ा। इस प्रकार शत्रुभाव से प्रकट हुए कर्मठ ने वहाँ समकित प्राप्त किया।

जिस समय कर्मठ मेघवाली उपसर्ग कर रहा है, उसी समय धरणेन्द्र भक्ति करता है; किन्तु ऐसे शत्रु और मित्र पर जिनकी समान मनोवृत्ति है, वे पार्श्वनाथ प्रभु जगत् के विघ्न दूर करें।

केवल ज्ञान प्राप्त कर एवं सौ वर्ष की आयुष्य पूर्णकर सम्मेद शिखर पर्वत पर पार्श्वनाथ प्रभु मोक्ष को प्राप्त हुए। आज भी वह पहाड़ पार्श्वनाथ-पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। इन पार्श्वनाथ प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त होने के तीन वर्ष पश्चात् मोक्ष का मार्ग आरम्भ हुआ और उनके मुक्ति गमन के पश्चात् चार पाट तक वह चालू रहा।

श्री पार्श्वनाथ के पश्चात् चौबीसवें महावीर स्वामी २५० वर्ष में मोक्ष को प्राप्त हुए। श्रीपार्श्वनाथ के पाट पर शुभदत्त गणधर हुए। उनके पाट पर हरिदत्तजी हुए और तब चौथे आर्य समुद्र हुए। उनके बाद पाँचवें स्वयंप्रभसूरि हुए। इनके शिष्य पिहिताश्रय मुनि के शिष्य बुद्धिकीर्ति ने 'बौद्धमत' के नाम से एक नया मत चलाया। स्वयंप्रभसूरि के पाट पर छठे केशीकुमार मुनि हुए। चरम तीर्थंकर महावीर के समय में ये केशीगणधर विद्यमान थे। इन्होंने श्वेताम्बी नगरी के नास्तिक प्रदेशी राजा को उपदेश देकर जैन बनाया था।

एक दिन केशीगणधर और गौतम स्वामी अचानक मिल गये। धर्मचर्चा करने पर सरल हृदय केशीगणधर ने महावीर स्वामी का मार्ग स्वीकार किया। वीर प्रभु को केवल ज्ञान होने के चार वर्ष बाद मोक्ष का मार्ग आरम्भ हुआ और वह उनके बाद तीन पाट तक चालू रहा। आनन्द कामदेवादिक दश तो महावीर के बड़े बारह व्रतधारी श्रावक ही थे। ये सब बीच में एक देवता का अवतार लेकर तीसरे भव में सिद्धि को प्राप्त करेंगे। उनके सिवाय महावीर स्वामी के समय में नौ व्यक्तियों ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था, जो कि आगामी उत्सर्पिणी में तीर्थंकर होकर मोक्ष को प्राप्त होंगे। १ श्रेणिक, २ महावीर के काका-चाचा सुपार्श्व का जीव, ३ श्रेणिक पौत्र उदायी राजा का जीव, ४ पोटिलाचार्य का जीव, ५ शंख श्रावक का जीव, ६ सत्यकि विद्याधर का जीव, ७ सुलसा का जीव, ८ रेवती श्राविका का जीव, ९ अम्बर तापस सुलसाकी परीक्षा करने वाला। इस प्रकार नौ श्रावकों ने भी वीर प्रभु के शासन में तीर्थंकर की पदवी प्राप्त की है। श्री महावीर के मोक्ष-गमन के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास में पाँचवाँ आरा इक्कीस हजार वर्ष का आरम्भ हुआ। इस आरे के प्रारम्भ में सात हाथ का शरीर और १३० वर्ष का आयुष्य परिणाम जानना चाहिए।

इस प्रकार तेईस तीर्थंकर और बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव और नौ ही प्रति वासुदेव तथा नवनारद ये इकहत्तर पुरुष चौथे आरे में हुए। इनके पहले प्रथम तीर्थंकर तो तीसरे आरे के अन्त में हो गये हैं। इस प्रकार ७१ पुरुष हुए हैं और बारह रुद्र मिलाकर चौरासी शलाका पुरुष हुए। इन सबको जैन धर्मी जानना चाहिए। नारद प्रथम तो परिव्राजक होते हैं, किन्तु पीछे से भाव जैन होकर आत्मज्ञान प्राप्त करते हुए मोक्ष मार्ग को साधते हैं। ●

सपनों की हो

मजबूत बुनियाद

निवेश कर निश्चिंत रहें आप

आप सपने बुनते रहते हैं। और आपके सारे सपने, आकांक्षाएं और आशाएं जुड़ी रहती हैं वित्तीय स्थायित्व और सुरक्षा के संग-साथ

यह आपके लिए सही मौका है जब आप अपने सपनों को साकार बनाने के लिए एक सुरक्षित स्थायी जमा योजना में अपनी बचत कर सकते हैं।

प्रूडेंशियल संपद — प्रूडेंशियल ग्रुप की स्थायी जमा योजना। चार सौ करोड़ रु० के इस विशाल संगठन में सम्मिलित हैं विख्यात कंपनियाँ — प्रूडेंशियल कैपिटल मार्केट्स लि०, प्रूडेंशियल मौली शुगर्स लि०, के एल जे प्लास्टिक्स लि०, प्रूडेंशियल फर्मास्यूटिकल्स लिमिटेड, प्रूडेंशियल श्री जगन्नाथ एग्रोटेक लि० और अनेक अन्य कंपनियां। अभी कार्यकाल के सिर्फ दस वर्ष हुए हैं और ग्रुप ने देश-विदेश में अपनी मौजूदगी का सिक्का जमा दिया है।

प्रूडेंशियल संपद स्थायी जमा योजना में निश्चिंत होकर निवेश कीजिए। और अपने सपनों को साकार होते देखिए।

Prudential

Sampad

FIXED DEPOSIT SCHEMES

Your Dreams. Our Schemes.

प्रूडेंशियल कैपिटल मार्केट्स लिमिटेड

1 व 2, ओल्ड कोर्ट हाउस कॉर्नर, कलकत्ता - 700 001

कार्यकुशलता से अर्जित विश्वास

With best compliments from :

R. C. BOTHRA & COMPANY PVT. LTD.

Steams Agents, Handling Agents, Commission Agents
& Transport Contractors

Regd. Office :
2, CLIVE GHAT, STREET,
(N. C. Dutta Sarani)
6th Floor, Room No. 6
CALCUTTA-700 001
Phone : 220-6702, 220-6400
Fax : (91) (33) 220-9333
Telex : 21-7611 RAVI IN

Vizag Office : 28-2-47 Daspalla Centre
Vishakhapatnam-530020
Phone : 69208/63276
Fax : 91-0891-569326
Gram : BOTHRA

CREATIVE LIMITED

12, Dargah Road, Post Box 16127 Cal-700 017
Phone : (033) 240-3758/1690/3450/0514
Fax : (033) 2400098, 2471833

SURANA MOTORS PVT. LTD.

24A, Shakespeare Sarani, 84, Parijat, 8th floor
Calcutta-700071 Phone : 2477450/5264

M/s. J. KUTHARI PVT. LTD.

12, India Exchange Place, Calcutta-1
Phone : 220-3142, Resi. 475-0995

PARK PLACE HOTEL

SINGHI VILLA, 49/2, Gariahat Road,
Calcutta-700019 Phone : 475-9991/9992/7632

M/s. METROPOLITAN BOOK COMPANY

93, Park Street, Calcutta-700016
Phone : 292418 Resi. 464-2783

M/s. D. SANDEEP & CO.

78, J. S. S. Road, Ratna Deep,
Opera House, Mumbai

BOYD SMITHS PVT. LTD.

8, Netaji Subhas Road, B-3/5, Gillander House
Calcutta-700001
Ph. : (O) 220-8105/2139 (R) 244-0629/0319

NAHAR

5/1, A. J. C. Bose Road, Calcutta-700 020
Phone : 2476874 Resi 2443810

P. C. JAIN

B-14, Sarvodaya Nagar, Kanpur-208005
Phone : 29-5552/5955

ARBEITS INDIA

8/1, Middleton Road, 8th Floor, Room No. 4
Calcutta-700071 Ph : 296256/8730/1029
Resi. : 2476526/6638/240526
Telex : 0212333 ARBI IN Fax : 0091-33290 174

JAYANTI LAL & CO.

20, Armenian Street, Calcutta-700001
Phone : 25-7927/6734/3816 Resi. : 400440

HARAKH CHAND NAHATA

21, Anand Lok, New Delhi-110 049
Phone : 6461075

RAJIV LALWANI

12, Duff Street, Calcutta
Phone : 2556705

G. M. SINGHVI

M/s. WILLARD INDIA LIMITED

Mcleod House
13, Netaji Subhas Road, Calcutta-700 001
Phone : 248-7476-8 (O) 475-4851/1483 (R)
Fax : 248-8184

RATAN LAL DUNGARIA

16B, Ashutosh Mukherjee Road, Calcutta-20
Phone : Resi. 455-3586

KUMAR CHANDRA SINGH DUDHORIA

7, Camac Street, Calcutta-700017
Phone: 242-5234/0329

GLOBE TRAVELS

Contact for better & Friendlier Service
11, Ho Chi Minh Sarani, Calcutta-700071
Phone : 2428181

PARSAN BROTHERS

Diplomatic & bonded Stores Suppliers
18-B, Sukeas Lane, Calcutta-1
Phone: 242-3870 Office Fax : 242-8621

ABHAY CHAND BOTHRA

Phone : Resi. 298-4729/298755

C. H. Spinning & Weaving Mills Pvt. Ltd.

Bothra Ka Chowk
Gangasahar, Bikaner

APRAJITA BOYD

9/10, Sitanath Bose Lane, Salkia, Howrah-711106

Phone : 6653666, 6652272

B. W. M. INTERNATIONAL

Manufacturers & Exporters

Peerkhanpur Road, [illegible]-221401 (U.P.)

Phone : Office 05414-25178, 25778, 25779

Bikaner Phone : 0151-522404, 25973

Fax : 05414-25378 (U.P.) 0151-61256 (Bikaner)

SUDEEP KUMAR SINGH DUDHORIA

Phone : Off. 252565/6315 Resi. : 4753133

A-D. ELECTRO STEEL CO. (PVT.) LTD.

Mfrs of Carbon Steel, Cast Steel, M. V. Steel &

all sort Alloy Steel Casting as per specification

Baltikuri (Surkhimill) Kalitala, Howrah

Office : 2203889/0714 Works : 6670485/2164

Resi. : 471-8393 Fax : 91-33-6672164

UJJWAL TRADING PVT. LTD.

Regd. Office : 11, Clive Row,

3rd Floor, Room No. 14, Calcutta-700001

Phone : Off. 242-4131/4756

ROYAL TOUCH OVERSEAS CORPORATION

47, Pandit Purushottam Roy Street, 2nd floor,

Calcutta-700 007 India

Phone : 91-33-230 1329, 2321033

Fax : 91-33-230 2413

SMT. KUSUM KUMARI DUGAR

166, Jodhpur Park, Calcutta-700068

Phone : 4720610

VIJAY KUMAR BHANDAWAT

20/1, Maharshi Devendra Road

5th Floor, Calcutta-7

Phone : 239-6823, 25-0623

GRAPHITE INDIA LIMITED
Pioneers in Carbon/Graphite Industry
31, Chowringhee Road, Calcutta-700 016
Phone : 2264943, 292194 Fax : (033) 2457390

KUSUM CHANACHUR
Prop. **CHURORIA BROTHERS**
Mfg. by—K. E. C. Food Product
P. O. Azimganj, Dist. Murshidabad
Phone : STD 03483-53234
Cal—230-0432, 231-2802

ARIHANT ELECTRIC CO.
Manufacturer of Electric Cables
21, Rabindra Sarani, Calcutta-700007
Phone : 255668

LALCHAND DHARAMCHAND
Govt. Recognised Export House
12, India Exchange Place, Calcutta-700 001, India
Phone (B) 220-2074/8958 (D) 220-0983/3187
Cable : SWADHARMI Fax : (033) 220975
Resi. : 464-3235/1541 Fax : (033) 4640547

NIRMALA BOTHRA
7/1/A, Nafar Kundu Road, Calcutta-700026
Phone : 475-5503

REENA MAHENDRA BHANDARI
13, Sahakar, 'B' Road, Church Gate, Bombay-20
Phone : 285-4970 Resi.
285-3762/65, 204-1792 Office

PRITAM ELECT. & ELECTRONICS P LTD.
22, Rabindra Sarani, Shop No. G-136
Calcutta-700073 Tel. (033) 262210

आ. श्री कैलाससागरसूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
गां. न.

मानव की तृष्णा मेरु पर्वत समान है। मन की शुद्ध भावना से इन्सान अपने कर्म क्षय कर सकता है

महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर हार्दिक शुभ कामनाएँ

G.C. Jain

A-40 N.D.S.E - II
New Delhi - 110049
Tel - 6445095/24011

WB/NC - 330

'Titth ayara'

Registered with the registered
of Newspapers for India under
No. R.N. 3018/77

Vol. XXI No. 3

June 1997

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नही है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछभी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर उनका संदेश जन-जन तक पहुँचे इस शुभ कामना के साथ –

Kamal Singh Rampuria

Rampuria Mansions

17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah

Phone No. : 666-7212/7225